कहानी

जाम

रवि नदी के किनारे बैठा था। रहीम चाचा भी उसके पास ही बैठ गए थे। ऐसे हालात में वे उसे अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। रवि भाव शून्य दृष्टि से डूबते सूरज को देख रहा था। हृदय में मंथन-सा हो रहा था। आज उसे न अस्ताचल की गोद में समाते भास्कर की शीतल किरणें सुहा रही थीं और न आकाश में सुदूर तक फैला लाल-पीला-सिंदूरी रंग ही सुकून दे पा रहा था। भग्न हृदय और खाली मन असह्य टीस का एहसास दे रहा था। पिता की असमय मौत का सदमा उसे गहरे तक कचोट गया था। देखते-देखते पिता के प्राण पखेरूउड़ गए थे। कुछ न कर सका था! कितना विवश और बेबस हो गया था वह!

पिता पिछले दो वर्ष से उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे। इलाज चल रहा था। डॉक्टरों की हिदायत पर भी अमल किया जा रहा था। मां तो उनके पायताने ही बैठे रहने लगी थी। नींद, सुख-आराम सभी बिसर गई थी। कई बार पिताजी उनसे कहते भी- अरे सावित्री, ऐसा भी क्या है जो हमेशा मेरे पास ही बनी रहती हो! कुछ अपना भी ध्यान रखा करो। इन दिनों आइने में अपना चेहरा देखा है? क्या दशा हो गई है तुम्हारी? क्या करूं, मन नहीं मानता। मां धीमे स्वर में कह देती। ऐसे कैसे काम चलेगा। घर संभालना भी तो जरूरी है। रवि अकेला पड़ गया है। दुर्गेश अभी पढ़ रहा है। घर में बहू अकेली क्या-क्या करेगी? उन्हें हिम्मत और हौसला देने वाला भी तो होना चाहिए न कोई। इतना कहकर वे कहीं दूर में खो जाते। शायद जीवन में भोगे-अभोगे पलों का परिदृश्य उनकी आंखों में तिरने लगता।

यह देख कर मां उनके पास से हट जाती। उन्हें अपने दायित्व का एहसास हो आता। फिर भी उनका मन पिताजी के पास ही अटका रहता। काम करना तो क्या चाहती और हो क्या जाता। फिर अपने आप पर ही खीझ उठती। उनकी ऐसी मनोदशा भांप कर बहू कहती- आप रहने दीजिए मांजी। मैं सब कर लूंगी। आप तो आराम कर लीजिए।

अरे बहू, आराम करने को भी मन नहीं करता। और फिर वे अपने मन की पीड़ा मन में ही दबाए दूसरे कमरे में चली जातीं।

दुर्गेश अभी पढ़ रहा था। उसने बी.ए. फाइनल की परीक्षा दी थी। पिता का सपना है कि रवि की तरह वह भी किसी रोजगार से जुड़कर अपने पैरों पर खड़ा हो जाए, तो मन में कोई चिंता न रहे। उनके मन में बस यही एक आस शेष थी।

और फिर उस रात पिताजी की घबराहट और बेचैनी बढ़ गई थी। रात के ग्यारह बज रहे थे। बाहर वातावरण में उमस थी। मां की तेज आवाज सुनकर रवि और दुर्गेश दौड़े आए थे। देख तो बेटा, अचानक क्या हो गया इन्हें! मां बेहद घबरा गई थी। बदन पसीने से भीग गया था।

चिंता न करो मां, अभी अस्पताल ले चलते हैं। रवि ने अपनी घबराहट को दबाते हुए कहा। हां भैया, मैं ऑटो लेकर आता हूं। दुर्गेश इतना कहकर तीर की तरह बाहर निकल गया था। थोड़ी दूर चौराहे पर ही ऑटो मिल गया था। पिताजी को लेकर वे अस्पताल पहुंच गए थे। इस समय रात के बारह बज रहे थे। भाग्य से उस दिन नाइट ड्यूटी पर वही डॉक्टर था, जिसका इलाज चल रहा था। जाते ही उसने टैस्ट और इलाज शुरू करवा दिया था। किंतु उसके चेहरे पर चिंता की लकीरें स्पष्ट परिलक्षित होने लगी थीं। जिसे भांप कर रवि का हृदय आशंकित हो उठा था। कोई खतरे की बात तो नहीं डॉक्टर! रवि ने पूछा। हां रवि, खतरा तो है। हाइपरटेंशन के कारण ब्रेन हेमरेज की आशंका बढ़ गई है। इन्हें तुरंत जयपुर हॉस्पीटल ले जाना होगा। अन्यथा..... आगे के शब्द डॉक्टर ने अनकहे ही छोड़ दिए थे। सुन कर रवि आशंकित हो उठा। बदन ठंडे पसीने से चिपचिपाने लगा। मस्तिष्क चकरा गया। चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। मां और दुर्गेश की आंखें भर आईं। चिंता का कारण रास्तों का जाम होना था। आरक्षण आंदोलन के कारण रेलें-बसें बंद थीं। प्राइवेट टैक्सियां भी अपने स्टैंड पर कई दिन से खड़ी थीं। यात्री जहां थे वहीं फंसे हुए थे। साधन न मिल पाने की विकट समस्या सामने आ खड़ी हुई थी।

अब क्या होगा भैया? दुर्गेश की आवाज भर्रा गई थी।

कुछ तो करना ही होगा दुर्गेश। यातायात बंद होने के कारण हम पिताजी को इस हालत में तो नहीं छोड़ सकते। उन्हें किसी भी तरह जयपुर ले जाना ही होगा। कहकर रवि सोचने लगा। हां, तुम ठीक कहते हो भैया। हमें प्रयास करना चाहिए। दुर्गेश ने कहा।

इस पर रवि कुछ नहीं बोला। अगले ही क्षण उसके दिमाग में एक विचार कौंधा। वह अस्पताल अधीक्षक के बंगले की ओर चल पड़ा। उसका विचार सरकारी एंबुलेंस निजी खर्चे पर प्राप्त करने का था।

अस्पताल अधीक्षक भला इंसान था। अर्धरात्रि को भी सोते से जाग कर उसने रवि से बात की। मानवीय संवेदनाएं जागीं भी, किंतु आरक्षण समर्थकों की उग्रता और रास्ते जाम होने के कारण वापिस दब गईं। उसने इस मामले में अपनी विवशता और असमर्थता जाहिर कर दी थी। रवि हताश-निराश चिंता से दबा-दबा उलटे पैर लौट पड़ा। अब उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। बीच भंवर में फंसी नाव की तरह हिचकौले खाने लगा था उसका मस्तिष्क।

लौटकर उसने देखा- रहीम भाई दुर्गेश और मां से बतिया रहे थे। वे अपने एक रिश्तेदार की कुशलक्षेम पूछने अस्पताल आए हुए थे। दुर्गेश ने उन्हें सारी बातें बता दी थीं। पिताजी की हालत भी देख चुके थे। यही कारण था कि उनके चेहरे पर भी दुख और चिंता की झांई तैरने लगी थी। रवि को आश्वस्त करते हुए रहीम भाई ने कहा- चिंता न करो बेटा। भाईसाहब को कुछ नहीं होगा। खुदा सब ठीक करेगा।

कृष्णकांत और रहीम भाई सहपाठी होने के साथ-साथ अच्छे दोस्त भी थे। अपने दोस्त और उसके परिवार को संकट में देखकर उनका हृदय द्रवित हो लरज गया था।

किंतु चाचा, हमें कोई साधन नहीं मिल रहा है। अब हम करें तो क्या? सहानुभूति पाकर रवि फफक पड़ा।

अरे बेटा, चिंता छोड़ो और बाहर मेरी जीप खड़ी है। पिताजी को लेकर तुरंत जयपुर के लिए रवाना हो जाओ। रहीम भाई ने रवि की पीठ थपथपाते हुए कहा।

रवि विस्मय सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए बोला- पर चाचा, रास्ते में कहीं... रवि की बात अधूरी ही रह गई। रहीम भाई बीच में ही बोल पड़े- इस समय पर-वर कुछ नहीं। यह समय सोच-विचार में खोने का नहीं है। मन में पनप रही शंका-आशंका छोड़ो। जो होगा देखा जाएगा। इंसान ही इंसान के काम आता है और इंसानी जीवन से अधिक मूल्यवान इस संसार में कुछ नहीं है। इंसान ही इंसान के सुख-दुख बांट सकता है, कोई पशु अथवा परिंदा नहीं। आंदोलनकारी भी इंसान ही हैं। अपने ही भाई हैं। उनके सीने में भी धड़कता हुआ दिल है। पत्थर दिल नहीं हो सकते वे। ऐसे वक्त पर तो वे भी रहम करेंगे।जाओ, अब विलंब न करो।

और फिर रहीम भाई विचारों में खो गए। सोचा-रवि के मन में उमड़ रही आशंका निर्मूल नहीं है। इस आंदोलन के कारण समूचे प्रदेश का जनजीवन खासा प्रभावित हुआ है। लोगों की भावनाएं आहत हुई हैं। माना कि अपना हक मांगना कोई गुनाह अथवा गलत नहीं है। किंतु जो तरीका अपनाया गया है, वह गलत है। बंद, तोड़-फोड़, झगड़ा, आगजनी और रास्ते जाम कर देना, क्या किसी भी आंदोलन का सही तरीका हो सकता है? शायद नहीं। रहीम भाई विचारों में खो गए थे।

रवि और दुर्गेश को रहीम चाचा एक नेकदिल, फरिश्ते की तरह ही लगे। ऐसे वक्त पर उनका यह उपकार जीवन भर याद रहेगा। और फिर वे पिताजी को लेकर जयपुर के लिए रवाना हो गए थे। नीरव रात्रि के सन्नाटे को चीरती हुई जीप तेजी से आगे बढ़ रही थी। पिता की हालत हर क्षण चिंता का कारण बनती जा रही थी। जितना जल्दी हो वे जयपुर पहुंच जाना चाह रहे थे। चालीस-पैंतालीस किलोमीटर का सफर तय किया होगा कि आगे सड़क के बीचों-बीच आग की लपटें उठती नजर आईं। सभी का मन आशंकित हो धक् से बैठ गया।

ड्राइवर ने गाड़ी की गति धीमी कर ली और नजदीक जाकर गाड़ी रोक ली। आगे रास्ता जाम था। भीड़ जमा थी। लोगों में जोश और उन्माद भरा आक्रोश था। यह मंजर देख कर अनहोनी आशंका के भय से रवि कांप उठा। फिर भी साहस बटोर कर पैदल ही आंदोलनकारियों की ओर बढ़ा।

मिन्नत भरे स्वर में बोला- भाइयो, मेरे पिताजी की तबियत बहुत खराब है। जीवन और मृत्यु से जूझ रहे हैं। उन्हें जयपुर हॉस्पीटल में भरती कराना है। इंसानियत के नाते दया कर हमें निकल जाने दीजिए। आप लोगों का बहुत उपकार होगा हम पर। और उसने अपने हाथ जोड़ लिए थे। नहीं भाई, यह नहीं हो सकता। इस तरह रास्ता देते रहेंगे तो जाम का अर्थ ही क्या रह जाएगा? अच्छा यही होगा कि तुम वापिस लौट जाओ। समवेत स्वर उभरा। मानवीय संवेदनाएं स्वार्थ की गाढ़ी चासनी में चिपक कर मूक हो गई थीं।

सुनकर रवि को झटका-सा लगा। आशा निराशा में बदल गई थी। उसने बहुत मिन्नतें कीं। गिड़गिड़ाया भी। पर उन लोगों पर कोई असर नहीं हुआ। दया, हमदर्दी और मानवीय संवेदनाओं ने स्वार्थपरक उन्माद और जुनून के समक्ष जैसे घुटने टेक दिए थे। किसी गंभीर बीमार को चिकित्सा सुविधा से वंचित कर पता नहीं क्या हासिल करना चाहते थे वे? रवि सोच में पड़ गया।

और तब ही उसके विचारों को झटका सा लगा। मां और दुर्गेश के रोने-चीखने की आवाज ने उसे आशंकित कर दिया। कलेजा, उछल कर मुंह को आ गया। घबरा कर रवि उनकी ओर दौड़ पड़ा। देखा-फटी आंखों से पिताजी शून्य को निहार रहे थे। शरीर ठंडा पड़ गया था। हृदय की धड़कन सदा के लिए थम गई थी। पिता की मौत के सदमे का एहसास रवि के हृदय को गहरे तक चीर गया। विवशता गहरे जख्म दे गई थी उसे।

कुछ क्षण बाद रवि ने अपने आप को संयत किया। मां और दुर्गेश को हिम्मत बंधाई और वापिस घर की ओर लौट पड़े। पूरे रास्ते कुछ न कर पाने का पश्चात्ताप हृदय को मथता रहा। मस्तिष्क के धरातल पर विचारों के बेलगाम घोड़े सरपट इधर से उधर दौड़ते रहे। शून्य में अनेक अनुत्तरित प्रश्न कौंधते रहे। क्या प्रजातंत्र में अपना हक हासिल करने के ये ही तरीके शेष रह गए हैं? ...दूसरों का हक खतरे में डाल देना, बात-बात पर रास्ते जाम कर देना, रेल-मोटरों को क्षति पहुंचाना, इलाज और गंतव्य तक पहुंचने से महरूम कर देना आदि। आंदोलन का यह विकृत रूप क्या संदेश दे रहा है भारतीय लोकतंत्र को? शांति, सद्भावना, हमदर्दी जैसी मानवीय संवेदनाओं का टोटा पड़ गया है जैसे इस आजाद भारत में! आजादी के मायने ही बदल गए हैं शायद।

दिन उगते-उगते जीप घर के पास आकर रुक गई थी। अड़ोसी-पड़ोसी सिमट आए थे। जिसने भी सुना दौड़ा चला आया था। सभी के चेहरे गमगीन थे। मन और दृष्टि में प्रश्न चिह्न था। रास्ते जाम कर आवागमन बाधित करना किसी भी आंदोलन की स्वस्थ परंपरा पर प्रश्न चिह्न सा महसूस होने लगा था सभी को। पिता को मुखाग्नि देते समय रवि के धैर्य का बांध टूट गया। बचपन से अब तक उनकी स्नेह छाया में भोगे क्षण आंखों में तिरने लगे। विगत स्मृतियां विकलन का एहसास देने लगीं। हिम्मत, साहस और धैर्य चिटक-सा गया। बेबसी और हृदय की विकलता अश्रु बनकर झर-झर बहने लगी।

रवि और दुर्गेश की ऐसी हालत देखकर रहीम भाई का दिल पसीज उठा। उनकी भी आंखें डबडबा आईं। निकट आकर धैर्य बंधाते हुए बोले- हिम्मत और सब्र से काम ले बेटा। समझ ले खुदा की यही मरजी थी। और फिर यह भी तो शाश्वत सत्य है कि जो जन्म लेता है वह मृत्यु को प्राप्त होता ही है। नश्वर संसार की इस गति को कोई नहीं रोक पाया।

पर चाचा, कैसे सब्र करूं? रवि फफक उठा। वह तो करना ही होगा बेटा। गम में तुम ही इतने टूट जाओगे तो मां और दुर्गेश का क्या होगा? उन्हें अब तुम्हें ही संभालना है। रहीम भाई ने कहा। हां, आप ठीक ही कहते हैं चाचा। और रवि ने चिता को अग्नि दे दी।